International Journal of Humanities and Social Science Invention (IJHSSI)
ISSN (Online): 2319 – 7722, ISSN (Print): 2319 – 7714
www.ijhssi.org ||Volume 7 Issue 1 || January. 2018 || PP. 113-118

कठोपनिषद् के नैतिक आदर्श

डॉ. वीरेन्द्र कुमार जोशी
व्याख्याता संस्कृत
गौरी देवी राजकीय महिला महाविद्यालय
अलवर

वेद संसार के सबसे प्राचीन ग्रन्थ और भारतीय संस्कृति के प्राण हैं । भारतीय धर्म , साहित्य , दर्शन सबकी आधारशिला वेदों की राजप्रासाद पर आधारित है । वेद शब्द विद् धातु से बना है जिसका अर्थ है ज्ञान । पारिभाषिक अर्थ में वेदों से अभिप्राय एक सम्पूर्ण साहित्य परम्परा से है । इस साहित्य में गीत , मन्त्र , काव्य ,धार्मिक विश्वास , दर्शन ,धर्म आदि सब कुछ है। इस साहित्यिक परम्परा काव्यगीत या मंत्र , देवताओं की स्तुतियां , देवशास्त्रीय विवाद तथा दार्शनिक जिज्ञासाएं आदि विविध प्रकार की कृतियां हैं । वैदिक साहित्य के अन्तर्गत संहिताएं , ब्राह्मण ग्रन्थ , आरण्यक ग्रन्थ और उपनिषद् परिगणित होते हैं । संहिताएं चार हैं ऋक् संहिता ,यजुः संहिता , साम संहिता तथा अथर्व संहिता । ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञ और उससे सम्बद्ध कार्यकलाप के लिए नियम दिए गए हैं । मन्त्रों की व्याख्या एवं विनियोग प्रस्तुत करने के कारण इन्हें ब्राह्मण ग्रन्थ कहते हैं । आरण्यक ग्रन्थों में यज्ञ का दार्शनिक रूप , आत्मविवेचन , तत्त्वमीमांसा , ज्ञान , कर्म और उपासना का समन्वय , वर्णाश्रम – धर्म , निष्काम कर्मयोग तथा प्राण – विद्या आदि का विशद वर्णन है । आरण्यक ग्रन्थ उपनिषदों के पूर्व रूप हैं । उपनिषदों में आत्मा , परमात्मा , सृष्टि – उत्पत्ति , ज्ञान कर्म , उपासना एवं तत्त्वज्ञान का प्रतिपादन है ।

उपनिषद् शब्द उप और नि उपसर्ग सद् धातु से क्विप् प्रत्यय करने पर निष्पन्नहोता है । इसका अर्थ है तत्त्वज्ञान के लिए गुरु के पास सविनय बैठना । उपनिषद् का अर्थ ब्रह्मविद्या भी है । इस विद्या के अनुशीलन से मुमुक्षु जनों की संसारबीजभूता अविद्या नष्ट हो जाती है और वह ब्रह्म की प्राप्ति करा देती है ।

ब्राह्मणों और आरण्यकों के चिन्तन का विकास उपनिषदों में मिलता है । उपनिषदों को दर्शन की परम्परा में प्रमाण के रूप में उद्धृत किया जाता रहा है। उपनिषद् कितने हैं, यह निर्णय करना कठिन है । शंकराचार्य ने दस उपनिषदों पर भाष्य लिखा है। मुक्तिकोपनिषद् में इनकी गणना इस प्रकार की गयी है–

ईश–केन– कठ– प्रश्न– मुण्ड– माण्डूक्य– तित्तिरिः ।

ऐतरेयं च छान्दोग्यं बृहदारण्यकं दश ॥

कठोपनिषद् कृष्ण यजुर्वेद से सम्बन्धित है । इस उपनिषद् में नचिकेता और यम के संवाद का प्रसिद्ध उपाख्यान है । कठोपनिषद् में अध्यात्म पक्ष के समान व्यवहार पक्ष भी महत्वपूर्ण है । बिना विशिष्ट गुणों के आत्मानुभूति सम्भव नहीं है । मनुष्य को अपने मन , वाणी और कर्म पर नियन्त्रण रखना चाहिए । कठोपनिषद् में आध्यात्मिक उत्कर्ष की प्रेरणा के साथ – साथ लौकिक और व्यावहारिक उपदेश भी है । मानव कल्याण के हेतुभूत यज्ञ – भूतयज्ञ , पितृयज्ञ , अतिथि यज्ञ देवयज्ञ का संकेत भी इसमें है । इसका उद्देश्य परम सत्ता से साक्षात्कार करने के साथ–साथ व्यावहारिक दृष्टि से आदर्श समाज का निर्माण करना भी है ।

अतिथि – सत्कार

प्राचीन भारतीय संस्कृति में अतिथि का बड़ा सम्मान किया जाता था । अतिथि देवो भव यह हमारा बहुत पुराना आदर्श था । कठोपनिषद् में अतिथि को अग्नि के समान महत्वपूर्ण माना है और यह भी कहा गया है कि उसे अग्नि के समाने घर में शान्ति प्रदान की जानी चाहिए –

नरः प्रवैश्वाविशत्यतिथिब्राह्मणो गृहान् ।

तस्येतां शान्तिं कुर्वन्ति हर वैवस्वतोदकम् ।।

किसी भी स्थिति में अतिथि की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए उसका अर्ध्य , भोजन आदि से भली प्रकार सम्मान करना चाहिए । अन्यथा वह अतिथि रूपी वैश्वानर सभी सुकृत नष्ट कर देता है –

आशाप्रतीक्षे संगतं सूनृतां च

इष्टापूर्ते पुत्रपशूंश्च सर्वान्

एतद्वृङ् क्ते पुरुषस्याल्पमेधसो

यस्यानश्नन्वसति ब्राह्मणो गृहे ॥

अर्थात् जिसके घर में अतिथि ब्राह्मण भूखा रहता है उस न्यून बुद्धि वाले मनुष्य की आशा , प्रतीक्षा और उससे मिलने वाले सुख , श्रेष्ठ वाणी , कामनापूर्ति , पुत्र , पशु आदि सम्पूर्ण वैभव को ही क्षुधातुर अतिथि नष्ट कर डालता है । यमराज भी अभ्यागत का समुचित सत्कार कर अपना कल्याण चाहते हैं –

तिस्रो रात्रीर्यद्वात्सीर्गृहेमे

अनश्नन्ब्रह्मन्नतिथिर्नमस्यः ।

नमस्तेऽस्तु ब्रह्मन्स्वस्ति मेस्तु

तस्मात्प्रति त्रीन्वरान्वृणीष्व ।।

मंगल – भावना

आज विश्व में मंगल भावना की बहुत आवश्यकता है । इसी का पोषण करते हुए शान्ति पाठ में गुरु और शिष्य दोनों में सौमनस्य रहने की भावना व्यक्त की गई है । ईश्वर से मंगल कामना है कि गुरु और शिष्य की रक्षा करे ,दोनों का साथ – साथ भरण – पोषण करे , दोनों एक साथ विद्या सम्बन्धी शक्ति को प्राप्त करें और दोनों की पढ़ी हुई विद्या तेज से परिपूर्ण बने , साथ ही दोनों किसी के भी प्रति वैर भाव न रखें –

ॐ सह नाववतु ! सह नौ भुनक्तु ।

सह वीर्यं करवावहै । तेजस्वि नावधीतमस्तु ।

मा विद्विषावहै ॥

कठोपनिषद् का यह महत्त्वपूर्ण सन्देश है । जो हमें गुरु शिष्य के परस्पर माधुर्यपूर्ण सम्बन्ध तथा सहयोग से ही समाज में सतत् शान्ति और उन्नति की प्राप्ति के लिए प्रेरित करता है ।

नचिकेता की पितृभक्ति

नचिकेता के पिता विश्वजित् यज्ञ में अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति को दान में दे देते हैं । किन्तु अपने पुत्र के प्रति प्रेम के कारण उसकी आजीविका के लिए कुछ दुधारू गाय रख लेते हैं और उनके स्थान पर बूढ़ी और मरणासन्न गायों का दान कर देते हैं । इस पर पिता का कल्याण चाहने वाला नचिकेता सोचता है कि इससे मेरे पिता का इहलौकिक और पारलौकिक अभ्युदय तो होगा नहीं । अपितु इस प्रकार की गायों का दान देने से अनन्दा नामक नरक की प्राप्ति होगी –

पीतोदका जग्धतृणा दुग्धदोहा निरिन्द्रियाः ।

अनन्दा नाम ते लोकास्तान्स गच्छति ता ददत् ॥

पिता के हित – चिन्तन में रत नचिकेता जब इस सम्बन्ध में पिता से बात करता है तो पिता ही उसे क्रोध में आकर यमराज को देने की बात कहते हैं , तो पुत्र पिता की आज्ञा शिरोधार्य कर यमराज के पास जाने को सहर्ष तैयार हो जाता है । यह है आदर्श पुत्र नचिकेता , जो पिता की आज्ञा पालन में अपनी मृत्यु को भी सहर्ष स्वीकार कर लेता है । विचारणीय है कि जो पिता उसे मृत्यु मुख में डाल रहा है , पुत्र उसकी मंगल कामना करे । यह उसकी पितृभक्ति का उत्कृष्ट स्वरूप है। उपनिषदों में ही 'पितृ देवो भव' की सीख दी गई है। पुराणों में पितृभक्ति के अनेक दृष्टान्त हैं , जहाँ पुत्र ने पिता की इच्छापूर्ति हेतु अपना सर्वस्व त्याग दिया ।

यहां एक बात और ध्यान देने की है कि प्राणी को कभी भी क्रोध नहीं करना चाहिए क्योंकि वह क्रोध से उचित और अनुचित के विवेक को भूल जाता है । इतना होने पर भी नचिकेता अपने पिता का सर्वथा कल्याण चाहता है और यमराज से वरदान के रूप में उनकी प्रसन्नता ही मांगता है –

शान्तसंकल्पः सुमना यथा स्याद्

वीतमन्युर्गौतमो माभि मृत्यो ।

त्वत्प्रसृष्टं माभिवेदेत्प्रतीतः

एतत् त्रयाणां प्रथमं वरं वृणे ।।

गुरु – शिष्य – सम्बन्ध

यह यमराज और नचिकेता गुरु शिष्य के रूप में उपस्थित होते हैं । ज्ञान प्राप्ति के लिए श्रद्धा आवश्यक है जैसा कि कहा भी है श्रद्धावान् लभते ज्ञानम् नचिकेता भी श्रद्धासम्पन्न है –

स त्वमग्निं स्वर्ग्यमध्येषि मृत्यो

प्रब्रूहि त्वं श्रद्दधानाया मह्यम् ।।

नचिकेता का अपने गुरु यमराज के प्रति व्यवहार बड़ा ही सम्मान एवं विनम्रता पूर्वक है । तीन दिन से भूखे प्यासे रहने पर भी नचिकेता यमराज के प्रति विनम्र ही है । नचिकेता मेधावी शिष्य भी है । वह यम द्वारा प्रदत उस विद्या को तत्काल हृदयंगम करके उसी के सामने दोहरा देता है और यम को अपने बुद्धि से प्रसन्न कर लेता है । योग्य शिष्य को पाकर गुरु का प्रसन्न होना स्वाभाविक है और वे प्रसन्न होकर नचिकेता को एक और अतिरिक्त वर प्रदान कर देते हैं –

तमब्रवीत्प्रीयमाणो महात्मा

वरं तवेहाद्य ददामि भूयः ।

तवैवं नाम्ना भवितायमग्निः

सृङ्.काचेमामनेकरूपां गृहाण द्यद्य

आत्मज्ञान की शिक्षा प्रदान करने से पूर्व भी यमराज नचिकेता की विविध प्रकार से परीक्षा लेते हैं । उसे विभिन्न प्रकार के सांसारिक प्रलोभन भी देते हैं –

ये ये कामा दुर्लभा मर्त्यलोके

सर्वान्कामांश्छन्दतः प्रार्थयस्व ।

इमा रामाः सरथाः सतूर्या

न हीदृशा लम्भनीया मनुष्यैः ।

आभिर्मत्प्रत्ताभिः परिचारयस्व

नचिकेतो मरणं मानुप्राक्षीः

किन्तु नचिकेता किसी भी प्रलोभन से विचलित नहीं होता । उसकी रूचि तो केवल आत्मतत्त्व का ज्ञान प्राप्त करने में है । नचिकेता अत्यन्त संयत और स्पष्ट रूप से कहता है कि आत्मतत्त्व के अतिरिक्त अन्य समस्त पदार्थ क्षणभंगुर एवं अनित्य हैं । मेरा उनके प्रति कोई आकर्षण नहीं है । अन्त में नचिकेता एक ही निश्चय के प्रति दृढ़ रहता है और यम से आत्मज्ञान पाने का आग्रह करता है –

यस्मिन्निदं विचिकित्सन्ति मृत्यो

यत्साम्पराये महति ब्रूहि नस्तत् ।

योऽयं वरो गूढमनुप्रविष्टो

नान्यं तस्मान्नचिकेता वृणीते ।।

नचिकेता की वाक्पटुता , योग्यता जिज्ञासा और श्रद्धा से प्रसन्न होकर अन्त में यमराज उसे आत्मतत्त्वज्ञान प्रदान करते हैं।

विवेक एवं संयम

कठोपनिषद् में एक रूपक द्वारा बताया गया है कि यह शरीर एक रथ है, आत्मा एक यात्री (रथी) है । बुद्धि सारथि है , इन्द्रियाँ उस रथ के घोड़े हैं और मन लगाम है । जब रथी लगाम को ढीला कर देता है तो इन्द्रियरूप घोड़े विषयों की

ओर दौड़ने लगते हैं । जिससे आत्मा कष्ट पाता है किन्तु जो विवेकी प्रमादरहित होकर लगाम को संयत करके इन्द्रियों को रूपादि विषयों की ओर बढ़ने से रोक लेता है तब वह शाश्वत सुख का अनुभव करता है –

'आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ।

बुद्धि तु सारथि विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ।।

इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयस्तेषु गोचरान् आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ॥

जो अज्ञानी पुरुष मनरूपी लगाम को ढीला कर इन्द्रियों को विषयों की ओर विचरने के लिए स्वतन्त्र कर देता है , तो इन्द्रियाँ दुष्ट घोड़ों के समान वश में नहीं रहतीं और वे कुमार्गगामिनी हो जाती हैं और जो विवेकशील मन को नियन्त्रित किये रहता है , इन्द्रियरूप घोड़े उसके वश में रहते हैं और वे सही रास्ते पर पुरुष को ले जाते हैं। कठोपनिषद् में भरे पड़े हुए नैतिक आदर्श मानव को सन्मार्ग की ओर प्रवृत्त कराते हैं और मानव के अभ्युदय एवं निःश्रेयस के साधन हैं ।

श्रेय और प्रेय मार्ग

कठोपनिषद् में श्रेयस और प्रेयस् दोनों मार्गों का उल्लेख है । इनमें श्रेय मार्ग ज्ञान, विद्या और मोक्ष का मार्ग है तथा प्रेयमार्ग अज्ञान एवं अविद्या का मार्ग है। ये दोनों ही मार्ग पुरुष को नाना प्रकार के विषयों में बांधते हैं और अपनी–अपनी ओर आकर्षित करते हैं । श्रेय मार्ग आत्मज्ञान का मार्ग है । इस आत्मज्ञान के मार्ग (श्रेयमार्ग) से अमृतत्व की प्राप्ति होती है , आत्मशक्ति का विकास होता है । अखण्ड आनन्द की प्राप्ति होती है, शान्ति का अनुभव होता है । इस मार्ग को अपनाने वाला सदा के लिए बन्धन से छूटकर अनन्त असीम सुख को प्राप्त करता है । यह मार्ग श्रेय, सुख एवं शान्ति का मार्ग है ।

प्रेय मार्ग अविद्या, अज्ञान, अनात्मज्ञान का मार्ग है। इस मार्ग से ऐहिक सुख–समृद्धि एवं ऐश्वर्य की प्राप्ति , तथा जागतिक सुख भोग की सामग्री की प्राप्ति होती है । यह अभ्युदय का मार्ग है । इस मार्ग को अपनाने वाले नानाविध प्रलोभनों में फँसकर सत्यमार्ग से भटक जाते हैं और नाना प्रकार के कष्टों को भोगते हैं । इस मार्ग में पहले तो सुख मिलता है औ बाद में कष्ट भोगना पड़ता है –

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेत–

स्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः ।

श्रेयो हि धीरोऽभिप्रेयसो वृणीते

प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते ॥

इस प्रकार श्रेय और प्रेय दोनों मार्ग पुरुष के सामने आते हैं।

मानव की स्वाभाविक प्रवृत्ति बाह्य पदार्थों की ओर अधिक रहती है । जिसे उपनिषदों में 'प्रेयस' कहा गया है । यह इन्द्रियजन्य सुख का मार्ग है । इसके विपरीत 'श्रेयस' मार्ग है जो लोककल्याण या आत्मकल्याण की भावना से अभिप्रेत है जिसे कर्त्तव्यशास्त्र का आधार कहा गया है । इस श्रेयस् मार्ग का आश्रयण ही हमें सांसारिक प्रवृत्तियों से उन्मुक्त कर नैतिक आदर्शों की ओर प्रेरित करता है और यही नैतिक आदर्श ही परमतत्त्व परमात्मा के दर्शन का साधन है , इसी परम तत्व के दर्शन से शाश्वत सुख एवं निःश्रेयस् की प्राप्ति होती है । मानव के कल्याण के लिए कठोपनिषद् का स्पष्ट उद्घोष है –

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत ।

सन्दर्भ – ग्रन्थ

1 – कठोपनिषद् – व्याख्याकार – डॉ. पारसनाथ द्विवेदी

2 – कठोपनिषद् – व्याख्याकार – डॉ. श्रीकृष्ण ओझा

3 – कठोपनिषद् – व्याख्याकार – डॉ. वासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी

4 – स्वरमंगला त्रैमासिकी संस्कृत –शोध – पत्रिका अप्रैल–जून 2022

5 – संस्कृत – वाङ्मय का बृहद् इतिहास प्रथम खण्ड वेद

प्रधान सम्पादक – पद्मभूषण आचार्य श्री बलदेव उपाध्याय , सम्पादक प्रो. व्रज बिहारी चौबे

6 – संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास – डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी

7 – संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास – पद्मश्री डॉ. कपिलदेव द्विवेदी आचार्य

8 – ईशावास्योपनिषद् – व्याख्याकार – डॉ. वाचस्पति पाण्डेय

9 – उपनिषद् परिशीलन – डॉ. शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी